स्वीकार करता गया, और समाज अपनी मूलभूत संकल्पनाओं से कहीं भटक गया। मैं यह स्वीकार नहीं करता कि भारत की मानसिकता पर यह आघात निर्दोष भाव से हुआ। अंग्रेजों ने स्पष्ट कहा कि यदि हमें यहां रहना है तो भारत को अपनी मूल चिन्तन-परम्परा व व्यवस्था से काटना होगा। मैकाले की शिक्षा पद्धति के आधार पर भारतीय मूल व्यवस्थाओं पर आघात हुआ। इन्हीं कारणों से अपने समाज जीवन में आज कई प्रकार की समस्याएं व व्याधियां उत्पन्न हो गई हैं।

'धर्म' की संकल्पना दुनिया के किसी हिस्से में नहीं है। अंगेजों ने इसे 'रिलीजन' के समकक्ष रख दिया। संप्रदाय के लिए यहां शब्द नहीं था। जब उन्होंने 'धर्म' शब्द की व्याख्या की तो उन्हें इसमें सम्प्रदाय की व्याख्या नजर आयी। लेकिन संप्रदाय अलग है, धर्म अलग है। उन्होंने धर्म और रिलीजन को एक बता दिया। भारत में भी यही चल पड़ा। कोई रिलीजन पूछे तो आप बोलेंगे 'हिन्दू'। लेकिन हिन्दू तो धर्म है, जिसकी परिभाषा अलग है। ईसाई, मुस्लिम ये संप्रदाय हैं। भारत में सैंकड़ों सम्प्रदाय हैं। कोई शैव है, कोई वैष्णव है। ये धर्म नहीं हैं। अंतर समझने की आवश्यकता है। गड़बड़ यह है कि हम सांप्रदायिक आदमी को धार्मिक मानते हैं। जो पूजा पाठ करते हैं, यात्रा करते हैं, कर्मकांड करते हैं, उन्हें हम धार्मिक मानने लग गए। लेकिन सचमुच में तो वे सांप्रदायिक हैं। धार्मिक लोग अलग हैं। केवल कर्मकांड करना, भस्म लगाना धर्म नहीं। ऐसी सोच उस व्यक्ति की व्यावहारिक क्रियाकलापों को देखने-परखने की दृष्टि का दरवाजा बंद कर देती है।

कई बार देखने में आता है कि दुकानदार तराजू की पूजा करता है। अपनी दुकान में छोटा सा मंदिर बना कर रोजाना उसमें फूल चढ़ाता है। लेकिन उसी तराजू में हेराफेरी करके सामान का वजन कम कर देता है। तो ऐसे व्यक्ति को क्या हम धार्मिक कह सकते हैं? गोमाता को पोलीथिन में खाना देने वाले व्यक्ति को क्या हम धार्मिक मान सकते हैं? कई बार किसी तीर्थ क्षेत्र में जाने के बाद वहां की गंदगी या अव्यवस्था को देखकर कोई दोबारा जाने में संकोच करे तो क्या वह अधार्मिक हो जाएगा? क्या हम इन धारणाओं को स्वीकार करने को तैयार हैं? लेकिन इन सबके बावजूद हम टिके हैं क्योंकि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग इन्हें अस्वीकार कर देता है। धर्म के इस बाह्य स्वरूप को